प्रो. डॉ. महेजबीन सैयद
समाजशास्त्र विभाग
श्रीमती सी. आर. गार्डी आर्ट्स कॉलेज, मुनपुर
तहसीलः कडाणा, जिलाः महिसागर, गुजरात, पीनः ३८९२४०

"गुजरात के आदिवासी समाज की आधुनिक समस्याएँ"

प्रस्तावनाः

भारतीय समाज अनेकविधता रखे हुए हैं । अनेक धर्म और जाति के लोग अपनी सामाजिक पहचान बनाए हुए जिंदगी के कई उतार-चढ़ाव पार कर रहे हैं । हमारे देश के सूदूर क्षेत्रों में असंख्य व्यक्ति ऐसे भी हैं जो आज के सभ्य समाज से दूर हैं । वे जंगल, पहाड़ी और पढारी क्षेत्रों में निवास करते हैं । जिन्हें आज हम वनवासी, आदिवासी और जनजाति के नाम से जानते हैं । स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय संविधान में इसे अनुसूचित जनजातियाँ कहा गया है, जिनकी जनसंख्या 8% है ।

भारतीय आदिवासियों का इतिहास अन्य समुदायों के इतिहास जितना ही पुराना और गौरवशाली है । प्राचीन संस्कृत साहित्य - वेद, पुराण, रामायण, महाभारत में भील आदिवासियों की वीरता, पराक्रम, भक्ति, समर्पण आदि की बात की गई है, जैसे शबरी और एकलव्य आदि ।

नृ-वंशशास्त्री और समाजशास्त्रियों ने प्रारंभिक शोधकार्य से लेकर भारतीय संविधान की रचना हुई तब तक आदिजाति, ट्राइबल वनवासी शब्दों को लेकर मतभेद रहे हैं । फिर भी विश्व की आदिवासी बस्ती के संदर्भ में भारतीय आदिवासी की जनसंख्या दूसरे स्थान पर है । भारत के आदिवासियों को आदिम जाति, मूलनिवासी, जंगली लोग, पछात हिन्दू, गूढ आत्मावादी आदि नाम से पहचाना जाता है ।

भारत की आदिवासी जाति के पुरस्कर्ता डॉ. वेरियन एल्विन, हर्बट रिजले और ठक्करबापा उन्हें 'भारत के मूल निवासी' बताते हैं । बइन्स 'वनवासी लोग', डॉ. हदन 'आदिम जाति', डॉ. जी. एस. धूर्ये 'पछात हिन्दू', गाँधीयुग के गांधीवादी कार्यकर उन्हें 'रानीपरज वन्यजाति', 'गिरिजन', 'भूमिजन' नाम से अलग पहचान देते हैं । वैसे देखा जाये तो हमारी कमनसीबी रही है कि उच्च-जाति वर्ग में तो ठीक पर खुद आदिवासी समाज में भी ये शब्द आज खास आवकार्य नहीं रहे हैं ।

जनजाति की परिभाषाः

विद्वानों ने जनजातियों को अपने ढंग से और अनुभव के आधार पर परिभाषित करने का प्रयास किया है -

(१) समाजशास्त्री गिलिन एन्ड गिलिन ने अपनी पुस्तक 'कल्चरल एन्थ्रोपोलोजी' में आदिवासियों को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "स्थानीय समूह का कोई भी आदिम संग्रह

जो एक सामान्य क्षेत्र में रहता है, एक सामान्य भाषा बोलता है और एक सामान्य संस्कृति का उपभोग करता है उसे जनजाति कहते हैं ।"

(२) डॉ. डी. एन. मजुमदारः एक जनजाति परिवारों का संग्रह है जिसका एक सामान्य नाम है, जिसके सदस्य एक समान्य भू-मंडल में निवास करते हैं, सामान्य भाषा बोलते हैं और विवाह, व्यवसाय और उद्योग के विषय में कुछ निषेधों का पालन करते हैं । पारस्परिक व्यवहार के बारे में एक निश्चित व्यवस्था का विकास करते हैं ।

(३) टी. बी. नायकः आदिम जाति के पहचान के कुछ लक्षण बताते हैं -

१ जनजाति अन्य पर अल्प मात्रा में आधारित होती है ।

२ आर्थिक पछातता

३ भौगोलिक तरीके से अन्य जातियों से दूर है ।

४ समान बोली होने के साथ प्रादेशिक भिन्नता है ।

५ राजकीय रीत से एक आदिवासी सभा नीचे संगठित होते हैं ।

६ परिवर्तन से विमुख है ।

७ बहुमति से अपने अलग क़ानून होते हैं ।

भारत के आदिवासीः

भारतीय आदिवासी सदियों से अनेकविध विस्तारों में अपनी टोलियाँ बनाये हुए अपना अस्तिव रखे हुए हैं । हमारे देश में भौगोलिक क्षेत्र के आधार पर आदिवासी जनसंख्या मध्यप्रदेश, उड़ीसा, बिहार, महाराष्ट्र और गुजरात में है ।

इस शोधपत्र द्वारा गुजरात के आदिवासियों के बारे में जानकारी प्राप्त करने के साथ यह भी ज्ञात कराया गया है कि यह जनसमूह गुजरात के कई इलाकों में बिखरे हुए होने के बावजूद अपनी सभ्यता और संस्कृति की अस्मिता बनाए हुए हैं ।

गुजरात के सभी जिल्लों में कच्छ और डांग सबसे अलग और अनोखे जिले हैं । पूरे भारत में डांग ही सिर्फ एक ऐसा जिला है जहाँ 4 भील राजाओं को और 10 नायकों को सरकारश्री की ओर से सालियाना मिलता है । डांग का इतिहास यह बताता है कि डांग शबरी की जन्मभूमि है जो अनेक रीत-रिवाजों से भरपूर है । दक्षिण गुजरात के डांग, धरमपुर विस्तार से लेकर सोनगढ, व्यारा, मांगरोल, भरुच तथा मध्य गुजरात के बडौदा, छोटाउदेपुर पंचमहाल, हालोल, कालोल, गोधरा, देवगढबारीया, संतरामपुर, दाहोद, झालोद तथा उत्तर गुजरात के साबरकांठा, दाता, अंबाजी तक फैले इस क्षेत्र में बसने वाले सभी आदिवासी की भौगोलिक परिस्थिति में विविधता दिखाई देती है ।

इसी तरह पंचमहाल के आदिवासी के बारे में हमें यहाँ भील की जनसंख्या अधिक दिखाई देती है । रामायण काल से प्रसिद्ध हुई भील जाति की पहचान आज तक लोकवाणी में अमर रही है - 'भीलडी के मीठे बोर रामजी ने खाये' - इस कथन के आधार पर कई कथाकाव्यों की रचना हुई है । भीलों की सबसे ज्यादा जनसंख्या पंचमहाल में है, जो अपनी आजीविका के लिए कृषि और कृषि आधारित मजूरीकाम करके अपना गुजारा करती

आई है । गाढ़ जंगलों में बसे होने के कारण अन्य आदिवासी से अलग होने की पहचान देते हुए अपनी भीली बोली में अपने शौर्यगुण बताते हैं - 'शूर अमो, मर्द अमो, जंगलोनां वाघ अमो' कुदरत के कोप के अधिन वे अपना तृतीय कक्षा का व्यवसाय चोरी-लूटफाट बना लेते हैं । इनके सुधार के लिए पंचमहाल में 1922 में ठक्करबापा ने 'भील सेवा मंडल' की रचना की । जिसके द्वारा शिक्षा, स्वच्छता और सामाजिक, आर्थिक विकास की प्रवृत्तियों ने उन लोगों को प्रभावित किया है । इसी तरह छोटाउदेपुर के रंगपुर गाँव में 'आनंद निकेतन', बडौदा में 'पछात सेवा मंडल', भिलोडा के मेघरज गाँव में भी भील सुधारणा का कार्य चल रहा है । इसी तरह नल सरोवर के आसपास बसने वाली पढार जाति समुद्र तट पर बसी हुई होने के कारण उनकी अर्थ-व्यवस्था समुद्र के तट पर आनेवाले प्रवासियों के साथ जुड़ी हुई है । मत्स्य व्यवसाय से जुड़े हुए हैं ।

अभ्यास प्रयुक्तिः

यह शोधपत्र तैयार करने के लिए निरीक्षण प्रयुक्ति और उपलब्ध गौण माहिती का उपयोग किया है ।

अभ्यास क्षेत्रः

गुजरात का पंचमहाल, महिसागर जिला पूर्व पट्टी के आदिवासी बहुजन वस्ती वाला विस्तार माना जाता है । यहाँ कई आदिवासी समूह बसे हुए हैं, जिसमें -

भीलः के. एस. सिंघ के अनुसार गुजरात में रहने वाले भील आदिवासियों की अगली पीढ़ी राजस्थान के मेवाड से 300 साल पहले स्थानांतरित हुई है जो अपने नजदीकी इलाके पंचमहाल में मैदानी क्षेत्र में, पहाड़ों में बसे हुए हैं । जिनकी उपजातियाँ गरासिया, भीलाला, ढाली भील, रावल भील, तडवी और वसावा है ।

नायकाः पंचमहाल की इस बलवाखोर जाति का इतिहास प्रसिद्ध है । जिनके पूर्वज चांपानेर के मुस्लिम अमीर और उच्च जाति के व्यापारियों के वहाँ अश्वपाल का काम करते थे । दूसरी नोंध यह प्रतीत कराती है कि इस जाति के लोग वलाविया की कामगीरी करते थे । जो गुजरात में सुरत, बडौदा में भी बसे हुए हैं । पंचमहाल में ये जांबुघोडा, नारुकोटा, देवगढबारीया, हालोल, कालोल और शहेरा तक फैले हुए हैं ।

पटेलियाः खेतीबाडी-खेतीकाम पर निर्भर यह जाति पंचमहाल में दाहोद, लीमखेडा, देवगढबारीया में बसे हुए हैं । श्री विमल शाह के अनुसार - राजपूत ने भीलों की लश्कर में भर्ती की थी और उनकी स्त्रियों से विवाह करने से उत्पन्न जाति उत्तर गुजरात में गरासिया, पंचमहाल में पटेलिया के नाम से जानी जाती है ।

राठवाः जो गुजरात में राठ जंगल और पहाड़ी इलाकों में रहते होने की वजह से राठवा के नाम से जाने जाते हैं । जो गुजरात में जांबुधोडा, देवगढबारीया, घोघंबा पंथक में फैले हुए हैं । बामनिया, बारीया, काथरी, मोहनीया, फदीया उनके उपजूथ हैं ।

धानकाः जो संतरामपुर, जांबुघोडा, लीमखेडा, देवगढबारीया, लुणावाडा, झालोद, गोधरा, हालोल, कालोल में बसे हुए हैं । जिसके पीछे एक लोकवायका-दंतकथा प्रचलित है कि वे मूल पावागढ के चौहान राजपूत थे । महमूद बेगडा के आक्रमण के बाद ये जाति जंगलों, गुफाओं में आश्रित रही । जहाँ वे कच्चा धान खाकर रहे जिससे वे धानका कहलाये । इनमें से कई नर्मदा नदी के तट पर बसे जो दक्षिण गुजरात में तडवी कहलाये । इस तरह पंचमहाल और गुजरात में आदिवासी समूह अपनी अलग पहचान और इतिहास रखे हुए हैं ।

स्वाभाविक ही है कि उनकी समस्याएँ भी अपने भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक परिप्रेक्ष्य में अलग-अलग रुप से उनसे जुड़ी हुई हैं । जिसका विवरण नीचे दिया गया है ।

इस शोधपत्र में गुजरात के आदिवासियों की समस्याओं के बारे में जानकारी देने का उद्देश्य है । मेरा मानना है कि भारतीय जनजातियों की समस्याओं का जाल जटिल जरुर है लेकिन ना इलाज नहीं है । पृथक-पृथक भौगोलिक भू-मंडलों में निवास करने वाली जनजातियों की भाषा, परंपराएँ, व्यवसाय, रहन-सहन और जीवनशैली भी अलग-अलग है ।

इसलिए डी. एन. मजूमदार जनजातियों की समस्याओं को दो भागों में विभाजित करते हैं -

1 वे समस्याएँ जो भारत की जनजातियों तथा दूसरे सभी ग्रामीण समुदायों में एक जैसी होती हैं ।

2 वे समस्याएँ जो केवल जनजातीय समुदाय में ही पाई जाती हैं ।

ज्यादातर सभी आदिवासी ग्रामीण क्षेत्रों के इर्द-गिर्द बसे हुए हैं । पिछली दो सदी से वे शहरी जीवनशैली से अपनी रोजगारी और शिक्षा के उपकरण से जुड़ पाए हैं । इसीलिए आज वे भारत का एक अटूट हिस्सा है । लेकिन जब हम गुजरात की बात करते हैं तब चाहे कोई भी समाज हो पर उसका पिछड़ापन और उसकी विकसित अवस्था सामान्य रुप से उस समाज की अर्थव्यवस्था से निश्चित की जाती है । क्योंकि विकसित धंधा-रोजगार, खेती या उससे जुड़े पूरक व्यवसाय जैसे - मत्स्य उद्योग, पोल्ट्रीफार्म, लघु उद्योग जैसी आर्थिक प्रवृत्तियाँ उस समाज की आर्थिक संपन्नता के लिए मूलभूत रही है ।

इस शोधपत्र में गुजरात के पंचमहाल जिले के आदिवासियों की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं का उल्लेख किया गया है । आर्थिक समस्याएँ - इस शोधपत्र में गुजरात के पंचमहाल जिले के आदिवासियों का 19 वीं सदी के अन्त में अर्थतंत्र कैसा था वह जानना बेहद जरुरी है । उनकी पछात खेती, आज के आधुनिक व्यवसाय का अभाव, शिकारी जीवन, सब्जियों का उत्पादन करना, खेत से जुड़े तमाम कार्य करना उनके जीवन का महत्वपूर्ण भाग रहा है । गुंदर, लाख, शहद(मध), महुए(महुड़ा) जैसी वन्य पैदास एकत्रित करके रोजगार लेना उनका कार्य था । यह बातें उनकी अतिपछातता का चित्रण देती है ।

खेती की पछातता का सीधा प्रभाव उनकी आय पर दिखाई देता है । यहाँ के अधिकतर आदिवासी समूह सदैव शाहुकारों की नागचूड़ में फँसे हुए हैं । आर्थिक मुश्किल के समय वे डकैती जैसी असामाजिक प्रवृत्ति की ओर जाते हैं । जो पंचमहाल के आदिवासियों की मजबूरी, जरुरियातों से प्राप्त हुई है । जिसमें से उन्हें बाहर लाने के लिए गोविंदसिंहगुरु और भील सेवा मंडल द्वारा सामाजिक उपदेश में लूटफाट का निषेध दिया है ।

आज यहाँ के आदिवासी की अर्थव्यवस्था का स्वरुप बदल चूका है । खेती के अलावा पशुपालन, प्राइवेट ट्रान्सपोर्टेशन के साधन की मालिकी रखते हुए इंटों के व्यवसाय, कुशलता प्राप्त व्यवसाय जैसे - लाइटफीटींग, प्लम्बरींग के काम, बांधकाम क्षेत्र में कोन्ट्राक्टर रखना और सरकारी बिन सरकारी संगठित-असंगठित क्षेत्र में गुजरात के अन्य क्षेत्र में वे स्थानांतरित हो रहे हैं ।

वैसे देखा जाये तो भारत और गुजरात के इतिहास में 19 वीं सदी समाज परिवर्तन की सदी मानी जाती है । लेकिन उस समय के दौरान हुई सामाजिक और धार्मिक सुधारणा की प्रवृत्तियों में आदिवासियों के लिए सुधारणा प्रवृत्ति का कोई स्थान नहीं था । गुजरात के समाज सुधारक नर्मद, दलपतराम, करसनदास मुलजी, महिपतराम रुपराम जैसे समाज सुधारकों की प्रवृत्तियाँ सिर्फ शहर, उच्च जाति और भद्र वर्ग तक ही सीमित रही है ।

यहाँ के आदिवासी का आर्थिक जीवन सुधारणा के साथ शिक्षा का योगदान भी अनन्य रहा है । 20 वीं सदी की शुरुआत में आदिवासी जीवनक्रम में स्थिरता आई थी । ईसाई मिशन और भील सेवा मंडल ने आदिवासियों की खेत- सुधारणा में वैज्ञानिक अभिगम दिया । साथ ही अन्य व्यवसाय और हर प्रकार के कुशलता प्राप्ति के नये क्षेत्रों को अपनाने का प्रोत्साहन दिया और साथ ही शहरी समुदाय की ओर स्थानांतरित होने का प्रोत्साहन दिया । पंचमहाल में आदिवासियों के लिए सहकारी प्रवृत्तियों का बीज ईसाई मिशनरियों ने बोया था । सहकारी भावना का व्याप बढ़ाने का श्रेय भील सेवा मंडल को जाता है ।

इस तरह पंचमहाल के ग्रामीण अर्थकारण को विकसित करने में ईसाई मिशनरियों और भील सेवा मंडल जैसी सामाजिक स्वैच्छिक संस्थाओं की विशिष्ट भूमिका रही है ।

सन् 1868 से 1947 के लगभग आठ दशकों में आदिवासी समाज में अनेक परिवर्तन हुए हैं । दिशाहीन भटकती जीवनशैली में परंपरागत अर्थतंत्र और समाजव्यवस्था में जीवित आदिवासियों के लिए परिवर्तन की नईं दिशाएँ खुलने लगी । जिसका अधिकतर लाभ लेने में दाहोद, झालोद, गोधरा की भील और पटेलिया जाति अग्रसर रही है । आदिवासियों की 'जंगल से मंगल' तरफ जाने की यात्रा की शुरुआत हुई ।

सरकार द्वारा आज़ादी के बाद की कल्याणकारी प्रवृत्तियाँ

आज़ादी के बाद भारत सरकार ने आदिवासी इलाकों को विकास की गति में लाने के लिए केन्द्रीय और राज्य सरकार द्वारा अनुसूचित जनजातियों के लिए कल्याणकारी योजनाएँ बनाई गईं । गुजरात सरकार ने ट्राइफेड, वनबंधु कल्याण योजना, शिष्यवृत्ति आदि

योजनाएँ बनायी । जनजातीय विकास परिषद की यह योजना से आदिवासियों द्वारा वन पदार्थो से ऐसी कई चीजें बनाई जाती हैं जिनसे उन्हें ऊर्जा प्राप्त हो सके । जैसे डांग में मध, गूगल, बांस की सभी चीजें जो साज-सजावट में उपयोगी है । जिसे हम Domestic System के तहत समज सकते हैं । इस तरह घरेलू उद्योग पर बड़े व्यापारियों द्वारा हो रहे शोषण को ऐसी विविध योजनाओं से बचाया जा सकता है ।

संविधान के अनुच्छेद 16 (4) 335 के अनुसार सार्वजनिक और सरकारी नौकरियों में भी उनके पद नियुक्त किये गये हैं । अखिल भारतीय सेवा से लेकर राज्य स्तर की सेवाओं में इन्हें आरक्षण प्राप्त है । इसलिए आज अनेक आई. ए. एस., पी. पी. एस. अधिकारियों में जनजातीय लोगों को तक प्राप्त हुई है, जिससे वे अच्छे पदों पर कार्यरत हो सके ।

लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि आज उनके पास भूमि के पीढ़ी दर पीढ़ी विभाजन के बाद केवल बिन-उपजाऊ भूमि ही बची है । आज यहाँ का आदिवासी भी संपूर्ण कृषक न रहकर आंशिक कृषक बन चुका है । परंपरा से उनका कोई पुश्तैनी व्यवसाय नहीं है और होता है तो वह जंगल और जंगल की ऊपज से है जो आज बहुत ही कम मात्रा में दिखाई देता है । समय आ गया है कि अब आदिवासियों को बिन-कृषि व्यवसायों को अपनाना जरुरी हो गया है । औधोगिक मजदूरी एवं उद्योगों से जुड़े छोटे व्यवसायों ने आदिवासी युवा वर्ग को आकर्षित किया है । शहर और उद्योगों की तरफ बढ़कर वे धीरे-धीरे नये भद्र-अभिजात वर्ग के मॉडल को अपनाने लगे हैं । जिसकी कुछ नकारात्मक असर उनकी सांस्कृतिक और सामाजिक जीवनशैली पर पायी जाती है ।

यह सच है कि इस समूह में Tribal eliet की स्थिति बढ़ रही है । आदिवासी विकास की धारा जहाँ तीव्र होती जा रही है वहीं सांस्कृतिक घरोहर विपन्न एवं लुप्त प्राय होती जा रही है । इस समुदाय के बीच बढ़ रहे अंतर और संघर्ष को मिटाने में मानवशास्त्री, समाजशास्त्री, अर्थशास्त्री एवं इस समुदाय के उत्कर्ष में रुचि रखने वाले एन. जी. ओ. और सरकारश्री आदि के संयुक्त प्रयास महत्वपूर्ण हैं ।

आदिवासी समुदाय की समस्याओं को हल करते हुए आदिवासी समुदाय के अतीत और उनकी संस्कृति के प्रति समुचित दृष्टिकोण अपनाया जाए । उन लोगों को इस प्रकार सम्मान दिया जाय कि उनकी पहचान हमारी राष्ट्रीय पहचान बनी रहे । ऐसी कोई संभावनाएँ न रहे कि ये समुदाय अपने को किसी ओर समुदाय से हीन समजता रहे । उनके अतीत को ध्यान में रखते हुए उन्हें आधुनिक सभ्यता की श्रेष्ठ वस्तुएँ उपलब्ध करायी जाए । हमारा लोकतांत्रिक देश समग्र भारतवसियों का विकास और उत्कर्ष करने के लिए प्रयत्नशील है । जहाँ हर समाज उसकी सभ्यता, संस्कृति और गौरवशाली इतिहास का पूरा सम्मान करता है । तब हमारे मूल निवासी आदिवासी समूह की समस्याएँ राष्ट्र की समस्याओं से अलग नहीं देखी जानी चाहिए ।

સંદર્ભઃ-

1 દવે હર્ષિદાબેન - વર્ષઃ 2007 - આદિવાસી સમાજનું સમાજશાસ્ત્ર – ક્રિએટીવ પ્રકાશન, વેરાવળ

2 मेहता प्रकाश चन्द्र - वर्षः 2006 - आदिवासी विकास एवं प्रथाएँ - डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

3 વાઘેલા અરૂણ - વર્ષઃ 2009 – પંચમહાલના આદિવાસીઓની વિકાસયાત્રા – પ્રકાશક અને મુદ્રક, રાધિકા પ્રિન્ટર્સ, ગોધરા